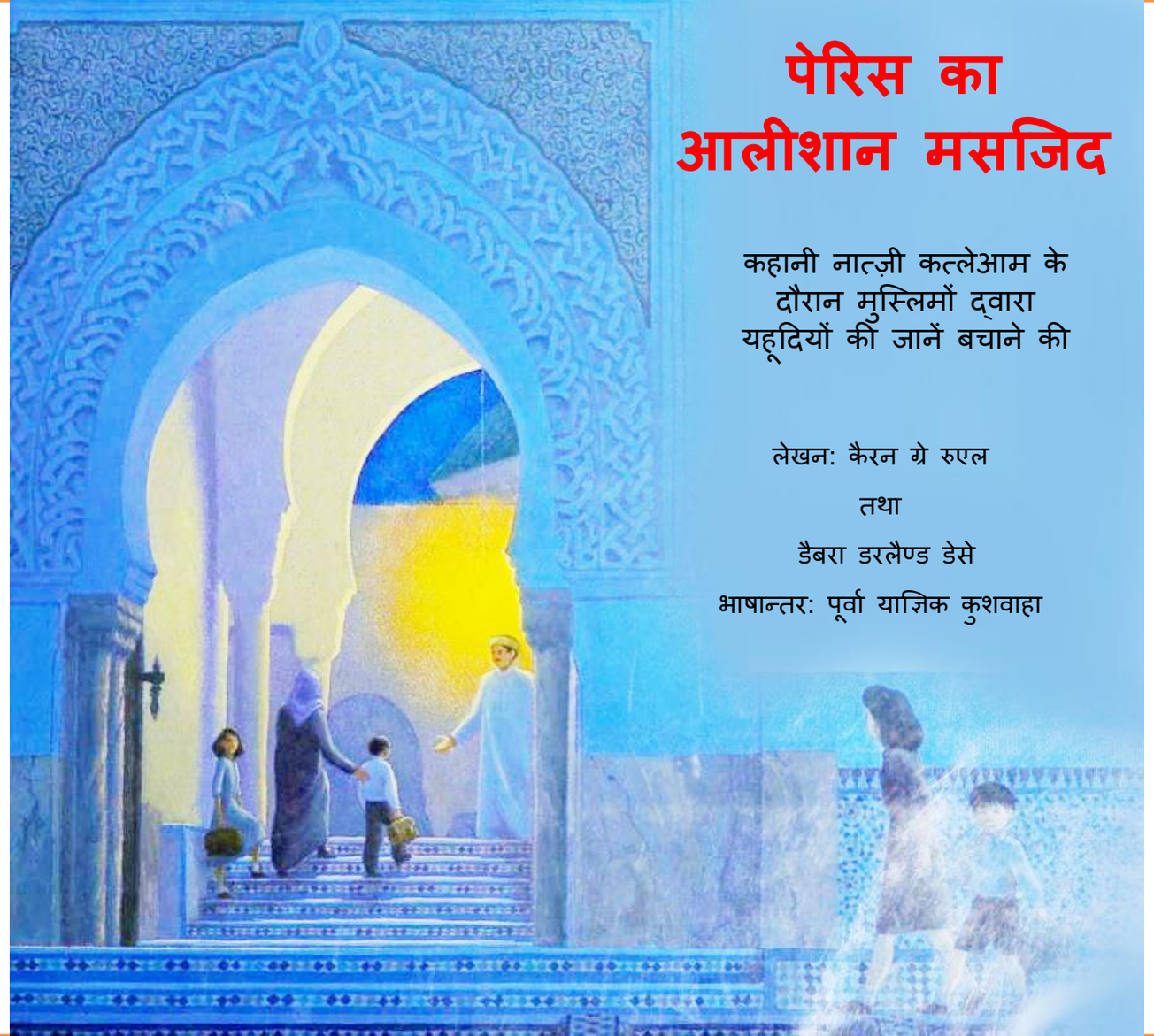

पेरिस का आलीशान मसजिद

कहानी नात्ज़ी कत्लेआम के
दौरान मुस्लिमों द्वारा
यहूदियों की जानें बचाने की

लेखन: कैरन ग्रे रुएल

तथा

डैबरा डरलैण्ड डेसे

भाषान्तर: पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा

1940 से 1944 के दौरान जब पेरिस पर नात्ज़ियों का कब्ज़ा था कोई भी यहूदी गिरफ्तारी और उसके बाद नज़रबन्दी शिविरों में भेजे जाने से बच नहीं सकता था। पर पेरिस के कुछ बाशिन्दे अपनी जान पर खेल कर यहूदियों की मदद करने को तैयार थे। इस ख़तरनाक दौर में कई यहूदियों को एक नामुमकिन-सी जगह में पनाह मिली - यह जगह थी पेरिस का ग्रैण्ड मौस्क। मसजिद का बड़ा-फैला हुआ परिसर था। यह केवल इबादत की जगह नहीं थी बल्की समूचे मुस्लिम सामाज का केन्द्र था। इसमें बाग़-बग़ीचे, रिहाइशी अपार्टमेंट, दवाख़ाना, क़िताबघर, यहाँ तक कि एक रेस्त्रां भी था। हलचल और आवाजाही से भरी यह जगह नात्ज़ी युद्धबन्दी के शिविरों से भागे मित्र देशों के सैनिकों और बच्चों समेत हर उम्र के यहूदियों के कुछ समय तक छिपने के लिए उम्दा थी।

कैरन ग्रे रुएल और डैबरा डरलैण्ड डेसे, पेरिस में बसे अल्जीरिया के कबायल लोगों और आलीशान मसजिद में काम करने वालों द्वारा नात्ज़ियों के विरोध की इस लगभग अजानी कहानी को उजागर करती हैं। इन लोगों की बहादुरी, उनकी आस्था और इन्साफ़ के प्रति निष्ठा ने कई जानें बचाई थीं।

पेरिस का आलीशान मसजिद

कहानी नात्ज़ी कत्लेआम के
दौरान मुस्लिमों द्वारा
यहूदियों की जानें बचाने की

लेखन: कैरन ग्रे रुएल

तथा

डैबरा डरलैण्ड डेसे

भाषान्तर: पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा

"एक इन्सान की जान बचाना ऐसा है मानो आपने पूरी इन्सानियत को ही बचा लिया हो"

इस्लामी हदीथ और यहूदी कहावत

1940 में जंग पेरिस में आ गई और वहाँ के बाशिन्दों की ज़िन्दगी ही उलट-पुलट हो गई। अपने भारी जूतों से नात्ज़ी सैनिक सड़कों को रौंदने लगे। लोगों को एक छोटी-सी डबलरोटी के लिए घंटों कतारों में इन्तज़ार करना पड़ता। यहूदी होने के जुर्म में पुलिस पूरे के पूरे परिवार को ही गिरफ्तार करने लगी।

जंग के दौरान ख़ौफ़, भूख और नुकसान रोज़मर्रा के साथी बन गए। हर जगह ख़तरा मंडराता था, खासकर यहूदियों के लिए, यहूदी बच्चों तक के लिए। जर्मनी, जहाँ से जंग शुरू हुई थी, के नात्ज़ी यहूदियों से बेइन्तहा नफ़रत करते थे और उनको ढूंढ कर उनका शिकार करने पर आमादा थे।

1939 में नात्ज़ी फौज ने पोलैण्ड पर हमला किया। इसके साथ दूसरा विश्वयुद्ध शुरू हो गया और नात्ज़ी शासन समूचे यूरोप में फैलने लगा। कई यहूदी भाग कर फ्रांस आए ताकि वे महफ़ूज़ रह सकें। पर 1940 में नात्ज़ियों ने फ्रांस को हराया और स्थानीय मददगारों के साथ विची में एक नई सरकार बनाई। इस सरकार ने फ़ौरन यहूदी विरोधी कानून बनाना शुरू कर दिए।

विची की पुलिस यहूदियों को गिरफ्तार कर उन्हें गन्दे, रोगाणुओं से भरे बन्दी शिविरों में ठूंसने लगी। उनकी एक दहशतअंगेज़ योजना और थी जिसका कयास तक नहीं लगाया जा सकता था। 1942 में नात्ज़ियों ने मौत के शिविर बनाए और यूरोप के यहूदियों का कत्लेआम शुरू कर दिया। विची सरकार ने हर उम्र के यहूदियों को, नन्हे शिशुओं तक को, धर-पकड़ा और उन्हें मौत के शिविरों में भेजा। फ्रांस के 11,402 यहूदी बच्चों को, जिसमें गोद खेलते बच्चे भी शामिल थे, शिविरों में भेजा गया। इनमें से सिर्फ़ तीन सौ बच्चे जंग खत्म होने के बाद बचे रह सके थे।

फ्रांस के कुछ बाशिन्दों ने यहूदी बच्चों को बचाने की कोशिश की। उन्हें कॉन्वेट स्कूलों में, खेतों और अस्पतालों में छिपाया, जहाँ वे दूसरे बच्चों में घुलमिल सकते थे। पर पेरिस में जहाँ नात्ज़ी सैनिक और विची पुलिस हर जगह थी, छिपाना बेहद मुश्किल था।

नात्ज़ियों के कब्ज़े के पहले दो वर्ष फ्रांस के दक्षिणी हिस्से पर नात्ज़ियों का नहीं बल्की विची सरकार का नियंत्रण था। विची पुलिस के बावजूद दक्षिण के ये इलाके यहूदियों के लिए उत्तर से कहीं ज़्यादा महफ़ूज़ थे। इसलिए क्योंकि उत्तर में नात्ज़ी काबिज़ थे। सो कई यहूदी परिवार दक्षिण तक के इस जोखिम भरे सफ़र पर निकलने की कोशिश करते थे।

पेरिस के कुछ यहूदियों को एक नामुमकिन जगह से मदद मिली। यह जगह थी पेरिस का आलीशान मसजिद। यह फ्रांस के मुसलमान समुदाय का केन्द्र था। पेरिस के बीचों-बीच, ऊँची दीवारों से घिरा यह मसजिद मानो एक नखलिस्तान ही था।

आलीशान मसजिद एक मृगमरीचिका-सा झिलमिलाता था। उसके सफ़ेद गुम्बज और पच्चीकारी से सजी चमकदार मीनारें, पेरिस के हल्के-दबे रंगों से बिलकुल उलट थीं। यह मसजिद 1926 में बनाया गया था। दरअसल उत्तरी अफ्रीका के कुछ मुल्क, अल्जीरिया, मोरौको और ट्यूनीशिया, फ्रांस के उपनिवेश थे। सो इन देशों के कई मुसलमान पेरिस में आ बसे थे। पहले विश्वयुद्ध में इन देशों के पाँच लाख सैनिक फ्रांस के लिए लड़े थे। सो फ्रांसीसी सरकार ने उनका शुक्रिया अदा करने मसजिद के लिए ज़मीन महज एक फ्रैंक के सांकेतिक भुगतान पर उपलब्ध करवाई थी।

उत्तरी अफ्रीका से उम्दा कारीगर बुलाए गए। उन्होंने मसजिद को बारीक नक्काशी और पच्चीकारी से संवारा। फूलों, पेड़ों और फ़व्वारों से सजे बाग-बगीचे के गिर्द सुन्दर खंभे ओर मेहराब बनाए गए, यहाँ हर ओर पाखी चहकते-गाते सुनाई देते थे।

मीनार के ऊपर से मुअज़्ज़िन की पुकार पूरे मुहल्ले में गूंजती। मसजिद को सचमें एक सामुदायिक केन्द्र की तरह बनाया गया था। मुस्लिम समुदाय में जो कुछ घटता वह सब मसजिद के दस्तावेजों में दर्ज किया जाता। जन्म, शादियाँ, मौतें तक। बच्चे और वयस्क वहाँ अध्ययन करते। मसजिद में बने क़िताबघर में वे दुर्लभ पाण्डुलिपियाँ पढ़ सकते थे। एक दिन छोड़ एक दिन, यानी बारी-बारी से मर्द और औरतें वहाँ बने हमाम में भाप स्नान कर सकते थे। बाग़ों में बच्चे खेल और वयस्क टहल सकते थे। मसजिद के अन्दर बने बाज़ार की दुकानों में ख़रीददारी कर सकते थे। मसजिद के रेस्त्रां में पुदीने की चाय और उत्तर अफ्रीकी मिठाई पी-खा सकते थे।

कोई भी ज़रूरतमन्द मुसलमान मसजिद में मदद पा सकता था। उसके परिसर में एक दवाख़ाना भी था, और पास ही के उप-नगर में एक अस्पताल भी, जहाँ ज़्यादा बीमार मरीज़ों का इलाज हो सकता था। वहाँ एक कब्रगाह भी थी।

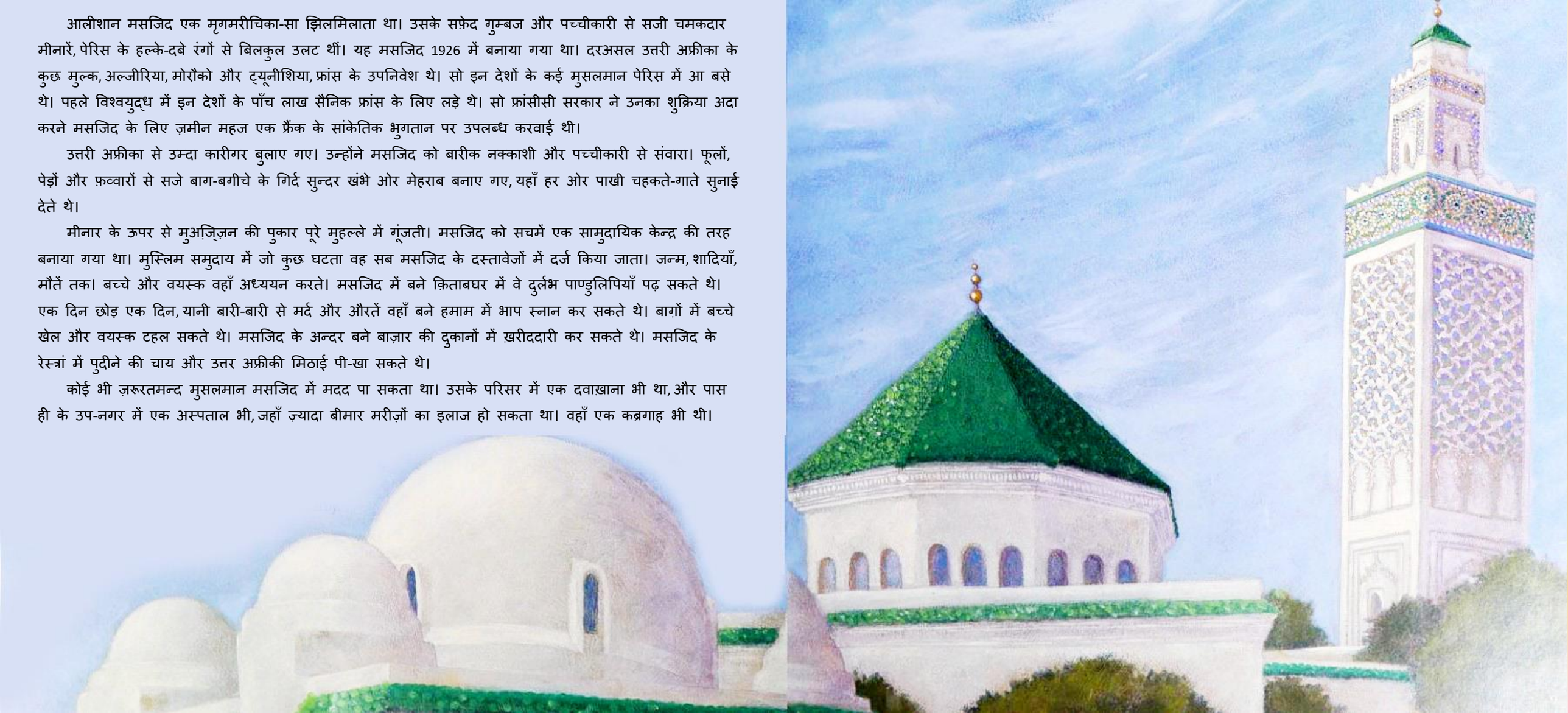

मसजिद का बन्दोबस्त सी कैदूर बैंगहैब्रि संभालते थे। वहाँ के रैक्टर (नाज़िम/अधीक्षक) के रूप में वे उसका कामकाज देखते थे। जबकि मसजिद के आध्यात्मिक नेता इमाम थे। सी बैंगहैब्रि एक नफ़ीस, तहज़ीबदार अल्जीरियाई कूटनीतिज्ञ थे। वे नाटक और कविताएं लिखते थे और उन्हें संगीत से प्यार था। वे मोरोक्को में बड़े अफ़सर रह चुके थे और उन्होंने कई फ्रांसीसी कूटनीतिज्ञों के साथ क़रीब से काम किया हुआ था। सी बैंगहैब्रि पेरिस और उत्तर अफ्रीका दोनों ही जगहों में बड़ी सहजता से रह पाते थे। इसलिए आलीशान मसजिद के पहले नाज़िम के रूप में वे बिलकुल सही व्यक्ति थे। फ्रांस में बसे मुसलमानों में वे सबसे रसूखदार इन्सान थे। फ्रांसीसी सरकार मानती थी कि वे पूरे मुस्लिम समुदाय की ओर से बात रखते हैं।

तब फ्रांस नात्ज़ियों से हार गया। पेरिस नात्ज़ियों के कब्ज़े में आ गया, इसके तीन महीने बाद ही, सितम्बर 1940 में, नात्ज़ियों और विची सरकार को यह शक होने लगा कि मसजिद के लोग यहूदियों की मदद कर रहे हैं। ज़ाहिर था कि इस शुबहा के चलते मसजिद के नाज़िम और उनके लिए काम कर रहे सभी लोग ख़तरे की ज़द में आ गए। पर वे इससे डर कर हटे नहीं।

सलीम हलाली, अल्जीरिया के बरबर यहूदी थे। पेरिस पर जब नात्ज़ियों का कब्ज़ा हुआ वे वहाँ फंस गए। सलीम चौदह बरस की उम्र में एक गायक बनने का सपना लिए पेरिस आए थे। अब ख़तरे में घिर वे पनाह लेने मसजिद आए। सी बैंगहैब्रि ने उन्हें एक धर्म बदलने का प्रमाण-पत्र बना दिया। इसमें लिखा था कि सलीम के दादा जी ने इस्लाम अपना लिया था। इसका सबूत पेश करने के लिए नाज़िम ने मुस्लिम कब्रगाह में गुपचुप एक अनाम कब्र पर सलीम का पारिवारिक नाम खुदवाया। इस उम्मीद से की अगर नात्ज़ी तहकीक़ात करें तो यह साबित हो सके की सलीम दरअसल मुसलमान हैं।

उत्तर अफ्रीका में मुसलमान और यहूदी अच्छे पडोसियों की तरह घुलमिल कर रहते थे, उनकी संस्कृति एक-सी थी। सदियों से वे एक-दूसरे को भाई मानते-कहते आए थे। शक्ल-सूरत भी उनकी एक समान ही थी। इसलिए जंग के बाकी समय सलीम मसजिद में एक मुसलमान होने का नाटक करते महफ़ूज़ रह सके।

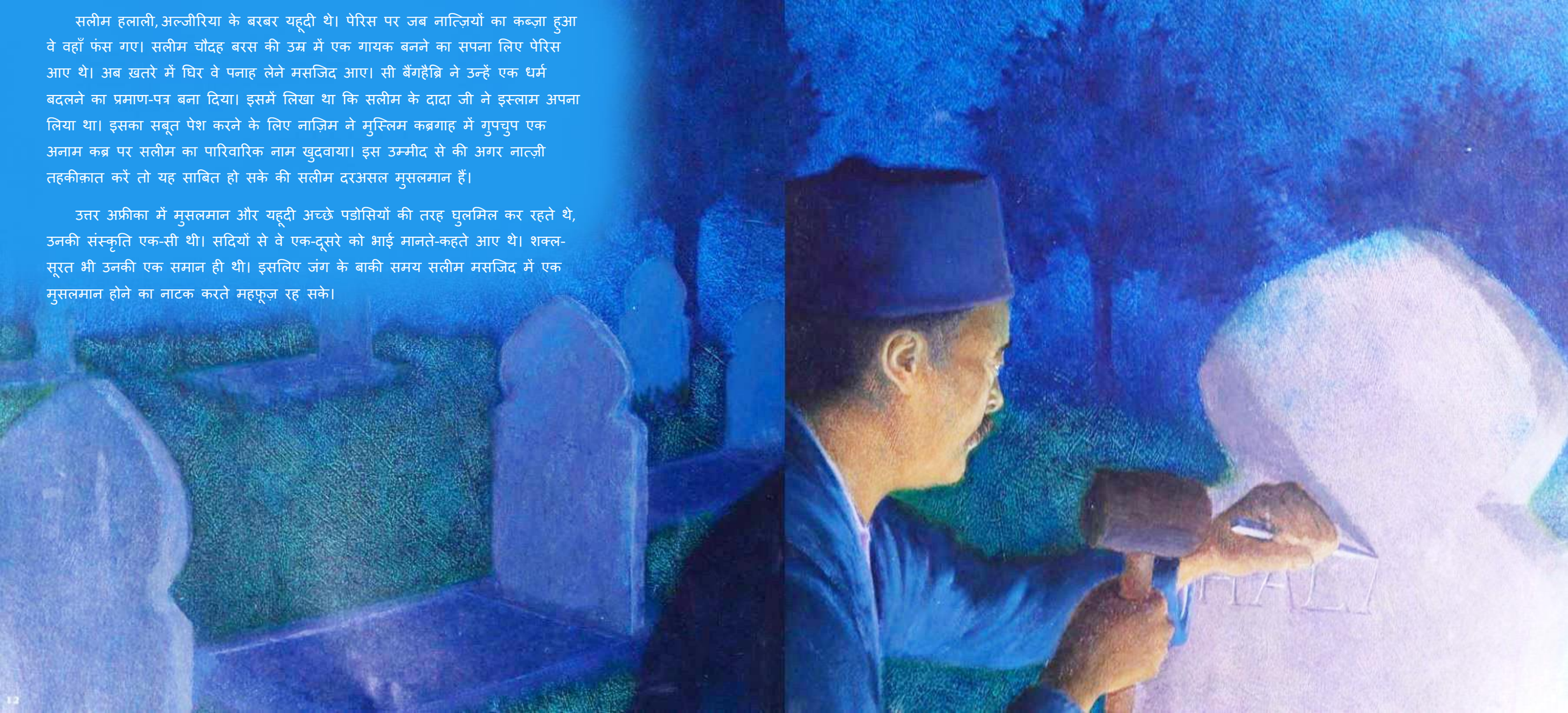

दो उत्तर अफ़्रीकी दोस्त जर्मनी के एक युद्धबन्दी शिविर से निकल भागे और किसी तरह पेरिस आ पहुँचे। ये दोस्त थे एल्बर्ट एस्सोलीने, जो यहूदी था और यास्सा रहल, जो मुसलमान था। ज़ाहिर था दोनों के पास कोई पहचान पत्र तो था नहीं। उन्हें यह भी मालूम था कि पकड़े जाने पर वे गिरफ्तार कर लिए जाएंगे। यहूदी होने के कारण एस्सोलीने का ख़तरा और बड़ा था।

दोनों नौजवान किसी धार्मिक संस्था में पनाह लेना चाहते थे। एल्बर्ट ने बताया कि, ''हमने सिनेगॉग (यहूदियों का प्रर्थनास्थल) को वैसे ही बाहर कर दिया था। गिरजा भी हमें पूरी तरह महफ़ूज़ नहीं लगा, सो हम पेरिस के मसजिद के दरवाज़े आ पहुँचे। वह (यास्सा) पहले अकेले ही अन्दर गया और पूछा कि क्या वह अपने गैर-मुसलमान दोस्त को ला सकता है। उनके हाँ कहने पर वह मेरे लिए वापस आया। हम अगले दो-तीन दिन वहाँ रहे।'' जिस समय एल्बर्ट मसजिद में छिपा था उसने कई दूसरे लोगों को वहाँ पनाह ले छिपते देखा। एल्बर्ट ने बताया, ''जितने वयस्क थे वे मस्जिद के तहख़ाने में छिपे थे और बच्चे ऊपर बने रिहाइशी अपार्टमेंटों में। सी कैदूर बैंगहैब्रि का परिवार बड़ा था, वे कई बच्चों को अपने साथ रखे हुए थे। जिन दूसरे परिवारों में बच्चे थे उनमें भी कई यहूदी हो सकते थे।''

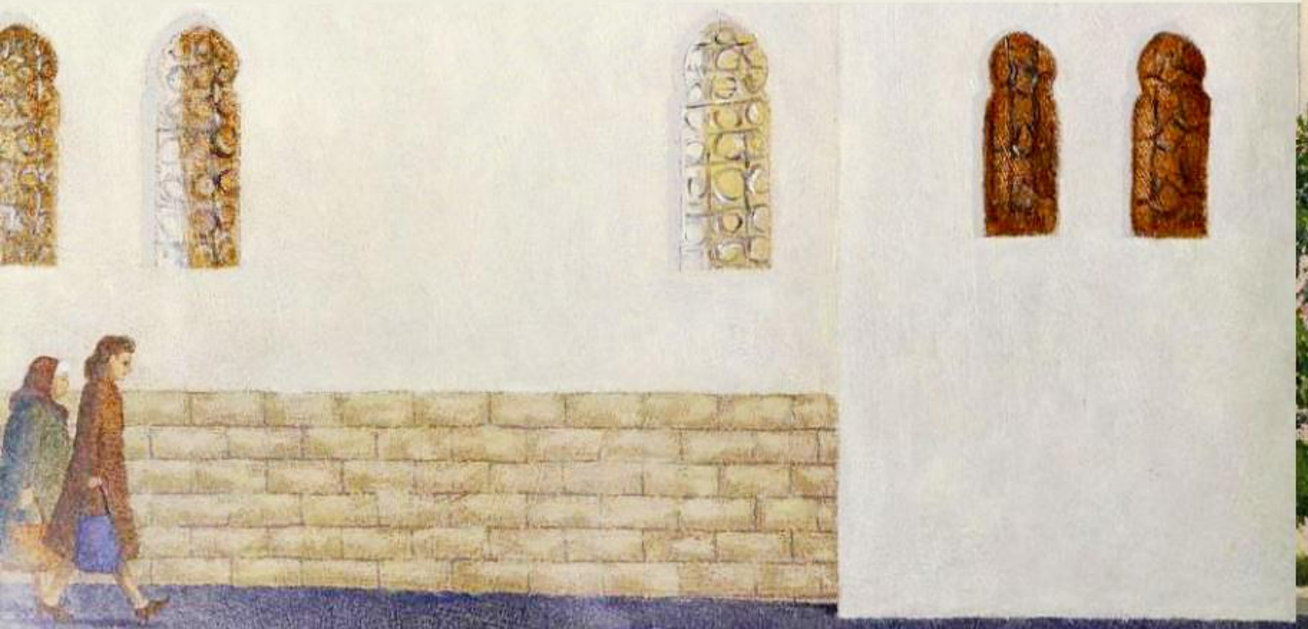

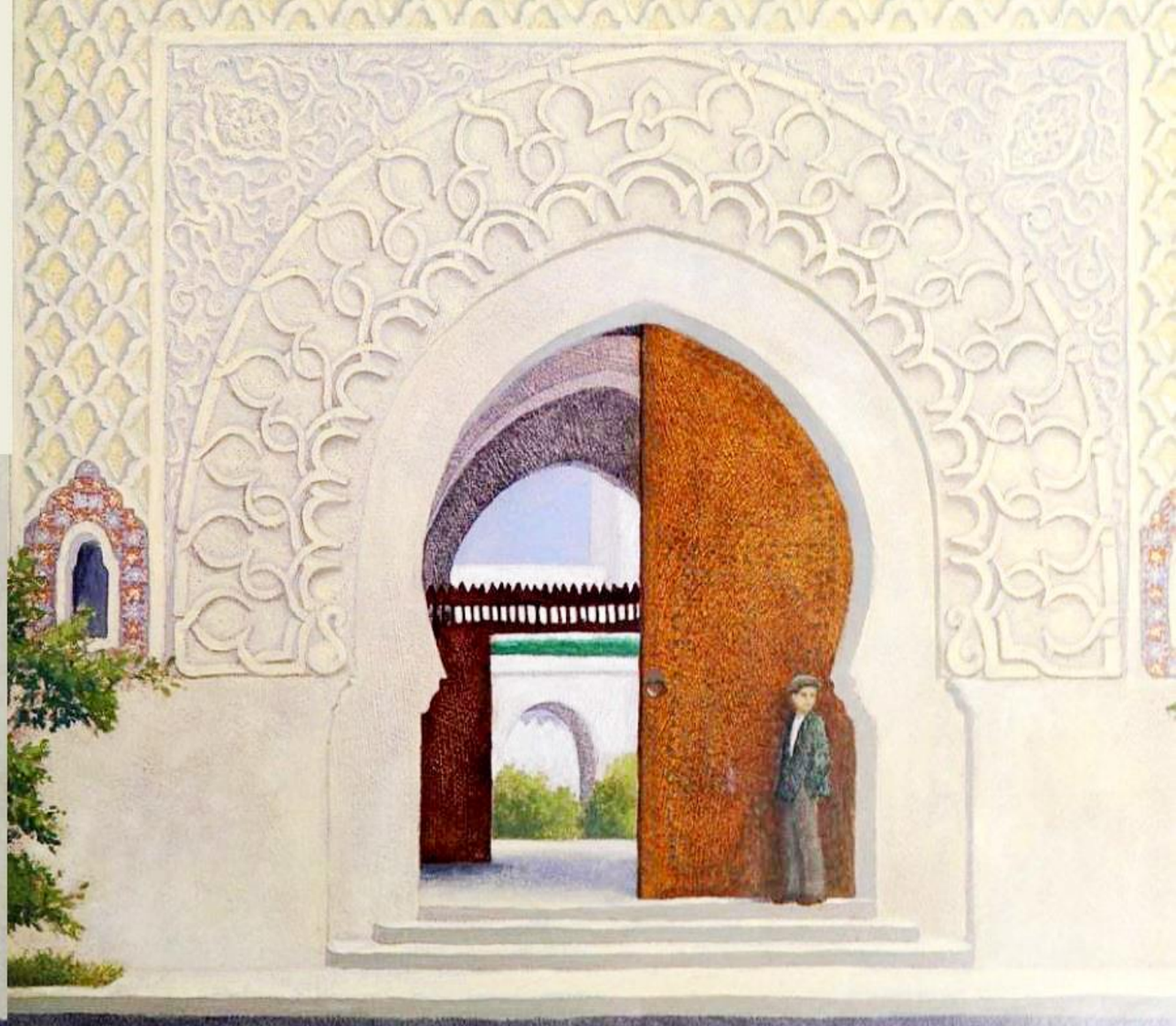

मसजिद में कुछ कमरे सार्वजनिक थे, पर इसके अलावा कुछ रिहाइशी अपार्टमेंट भी थे। ये मसजिद के लिए काम करने वाले लोगों के लिए थे - नाज़िम, इमाम, मुअज़्ज़िन, देखभाल करने वाले और दूसरे लोग। इनमें से कुछ लोग अपने परिवारों के साथ रहते थे और वे बड़ी ही आसानी से उत्तर अफ़्रीकी यहूदी बच्चों को अपने बच्चे कह कर रख सकते थे। किसीको कोई फ़र्क नज़र ही नहीं आता। और अगर आ भी जाता तो मस्जिद आसानी से जाली प्रमाण-पत्र मुहैय्या करवा देता। इन दस्तावेजों की असलियत को जाँचना मुश्किल था, क्योंकि उत्तर अफ़्रीका में रिकॉर्ड व्यवस्थित नहीं थे।

फिर भी केवल जो लोग मुस्लिम थे या उन जैसे दिखते थे, वे ही मसजिद में कुछ दिनों से ज़्यादा रह सकते थे। अधिकतर पनाह लेने वालों को काफ़ी तेज़ी से पेरिस से बाहर निकालना पड़ता था। उन्हें नात्ज़ियों की कड़ी नज़र से देर तक छिपा कर रखना मुश्किल था।

नात्ज़ी और विची सरकार के अफ़सर मसजिद के लोगों से इज़्ज़त से पेश आते थे। पर ज़रा-सा भी शक होने पर वे तहक़ीक़ात करने आ धमकते थे। किस्मत से खतरे की घंटी की एक व्यवस्था थी। सी बैंगहैब्रि अपनी मेज़ के नीचे लगे एक खुफ़िया बटन को दबा सकते थे, जो मसजिद के दूसरे हिस्से में लोगों को आगाह कर देता था।

चेतावनी पा पनाह ले रहे लोग मसजिद के उस अलग-थलग बने हिस्से में आ पहुँचते जो औरतों का इबादत करने का कमरा था। इसमें नात्ज़ी और विची पुलिस घुसने की ज़ुर्रत नहीं करती थी। नाज़िम उन्हें कुछ देर अटकाने के इरादे से उनसे जूते उतरवाते, जो कि इबादतघर में घुसने के पहले ज़रूरी होता है। सेना वाले भारी-भरकम जूते उतारने में कुछ वक़्त लगता था। इतनी देर में लोग आँखों से ओझल हो जाते।

नात्ज़ी सैनिक मुसलमानों को सीधे-सीधे अपना निशाना बनाने से हिचकते भी थे। उन्हें डर था कि कहीं उत्तर अफ्रीका में भी उनका विरोध न होने लगे। वे वहाँ मित्र देशों से पहले से ही लड़ जो रहे थे। इसके बावजूद एल्बर्ट ने लिखा, "कुछ मौके ऐसे आए जब हम पकड़े जा सकते थे। जैसे उस एक दिन जब मस्जिद में तम्बाकू की बू आ रही थी। सैनिक जानते थे कि मुसलमानों का धर्म उन्हें तम्बाकू पीने की मनाही करता है।"

डॉ. अहमद सोमिया, ट्यूनीसिया से थे। उन्होंने ऐसे बच्चों को बचाने की कोशिश की जिन्हें नात्ज़ी गिरफ्तार कर सकते थे। वे उन बच्चों को कोई गंभीर बीमारी बताते और पेरिस से दूर विशेष क्लिनिकों में भेज देते, ताकि वे जंग के दौरान सुरक्षित रह सकें। कभी वे उन्हें जाली पहचान-पत्र भी देते। ये दस्तावेज उन बच्चों को ईसाई या मुसलमान बताते थे।

जिस मुस्लिम अस्पताल में डॉ. सोमिया काम करते थे वहाँ के चिकित्सक रात में लुकछिप कर मित्र देशों के घायल पायलटों और पैराशूट से उतरे सैनिकों का इलाज करते। और दिन के वक़्त उन्हें छिपा कर रखते। इनमें से कुछ तो फ्रांस में जासूसी करने आए थे। दूसरों को फ्रांस के ऊपर उड़ान भरते समय नात्ज़ियों ने गोली चला मार गिराया था। इसलिए वे अब दुश्मन की सीमा में फंस गए थे और उन्हें मदद की ज़रूरत थी।

"जंग के दौरान," डॉ. सोमिया ने बताया, "हमने उत्तर अफ्रीका के भगोडे युद्धबन्दियों की मदद के लिए एक समूह बनाया था ... हम हर उस इन्सान की मदद करने को तैयार थे जिस पर जुल्म किया जा रहा हो, या जिसका शिकार किया जा रहा हो, जिसे छिपने में मदद चाहिए हो ... हम उन्हें मसजिद में भेजते जो उनके लिए हमेशा खुला था। कई लोगों ने यह रास्ता अपनाया और उन्हें मसजिद में पनाह मिली।"

एक व्यक्ति जिसे मदद चाहिए थी वह ट्यूनीसिया का यहूदी था। वह अपने काम के सिलसिले में पेरिस आया और तब अचानक ग़ायब ही हो गया। किसी को यह पता ही नहीं था कि उसके साथ आख़िर हुआ क्या। उसके परिवार को डर था कि उसे मार डाला गया है। ढ़ाई साल बाद जब जंग खत्म हुई वह अंत-तंत अपने घर पहुँचा। उसने बताया कि वह नात्ज़ियों से छिपा रहा था और उसे आलीशान मसजिद में पनाह मिली थी। वह पूरे समय वहीं रहता रहा था। उसने लौट कर अपने बड़े अफ़सर को बताया कि अपना समय उसने अरबी भाषा पर अपनी दख़ल बढ़ाने में लगाया था।

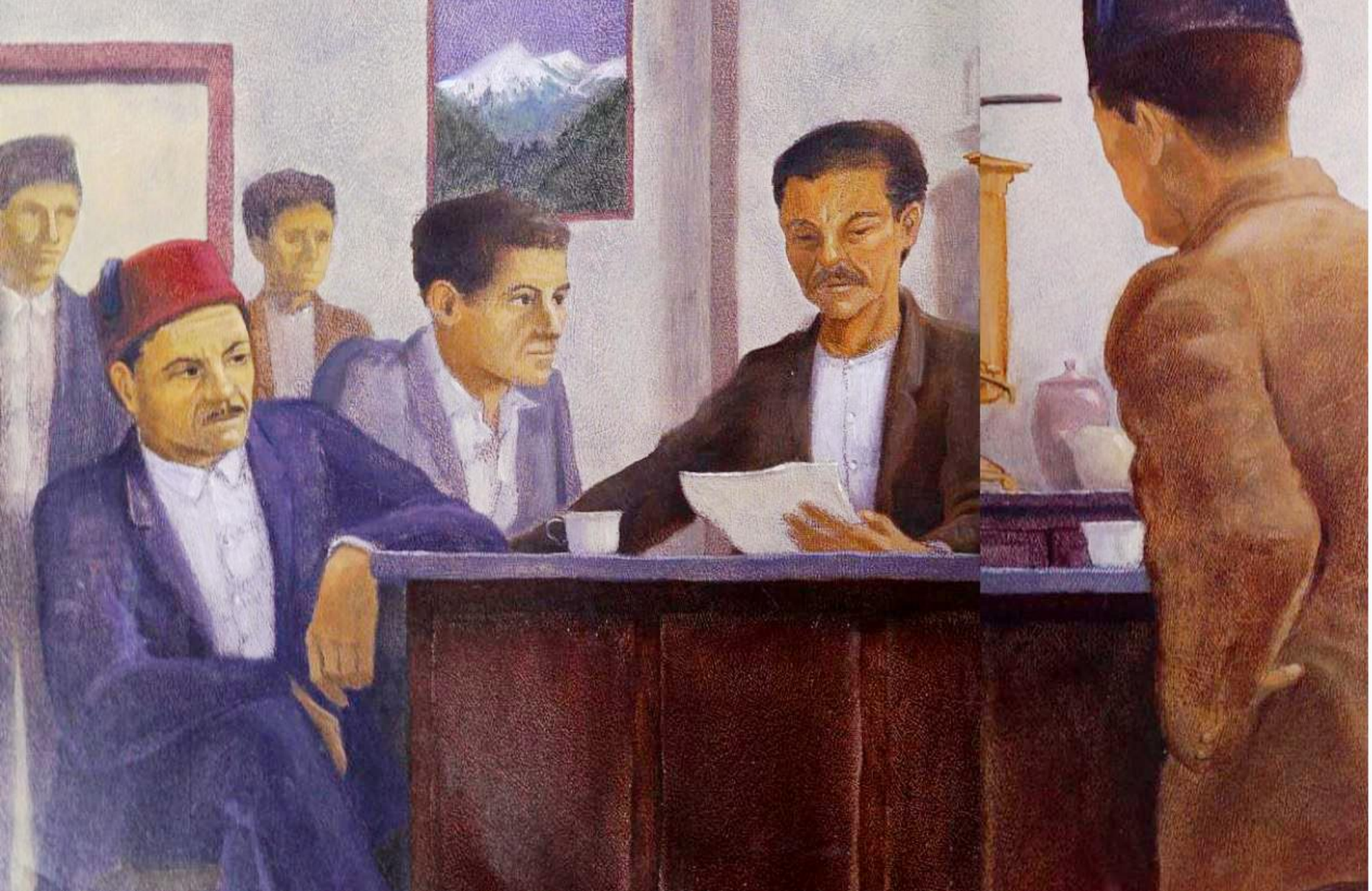

जिस समय पेरिस पर नात्ज़ी काबिज़ हुए, उस समय वहाँ रहने वाले सारे मुसलमान कबायल थे। मतलब वे अल्जीरिया के एटलस पर्वत के कबायली बरबर थे। पहले विश्वयुद्ध में जब फ्रांस ने अपने अधिकतर नौजवान खो दिए, तब कारखानों और निर्माण कार्य में उनकी जगह भरने कबायल से कामगार आए। इन्हीं कबायल कामगारों ने पेरिस की सबवे बनाई थी। वे अपनी कमाई घर भेजा करते थे ताकि पीछे छूटे उनके परिवारों का गुज़ारा चल सके। जब भी मौका लगता वे अपने परिवारों से मिलने घर भी लौटते। दो विश्वयुद्धों के दरमियानी समय में ये कबायली मुसलमान पेरिस का हिस्सा बन चुके थे।

1942 की गर्मियों में पेरिस में यहूदियों की धर-पकड़ बढ़ने लगी। जुलाई में सबसे बड़ी गिरफ्तारी हुई, जब विची पुलिस ने तेरह हज़ार यहूदियों को एक साथ कैद किया।

हाल में पेरिस के एक कैफ़े के पुराने कागज़ातों में एक ख़त मिला। इस कैफ़े का मालिक ट्यूनीसिया से था। ख़त कबायली की भाषा में लिखा था। कैफ़े मालिक ने बताया कि ख़त दूसरे विश्वयुद्ध के समय का है। उसमें लिखा हुआ था:

कल भोर पेरिस के यहूदी गिरफ्तार किए गए। बड़े-बूढ़े, औरतें, बच्चे। वे हमारे जैसे लोग थे, मुल्क से इतनी दूर बसे लोग, हमारे जैसे मेहनकश मज़दूर। वे तो हमारे ही भाई हैं। उनके बच्चे हमारे बच्चों जैसे ही हैं। जिस किसीको ऐसा कोई बच्चा मिले वह उसे जब तक हो सके, पनाह ज़रूर दे। जब तक यह बदनसीबी या यह तकलीफ़ बनी रहती है, तब तक वह उसकी हिफ़ाज़त करे।

ओ मेरे वतन के लोगों तुम्हारी दरियादिली कायम रहे!

क्या यह ख़त कैफ़े में पढ़ा गया था? क्या इसे कबायल मज़दूरों के बीच, उनके रिहायशी बासों में घुमाया गया था? ज़ाहिर है कि यह यहूदियों की मदद के लिए एकजुट होने की गुहार थी। साथ ही यह ख़त उत्तरी अफ्रीका के मुसलमानों और यहूदियों के बीच एक मज़बूत दोस्ताना रिश्तों का संकेत भी देता है।

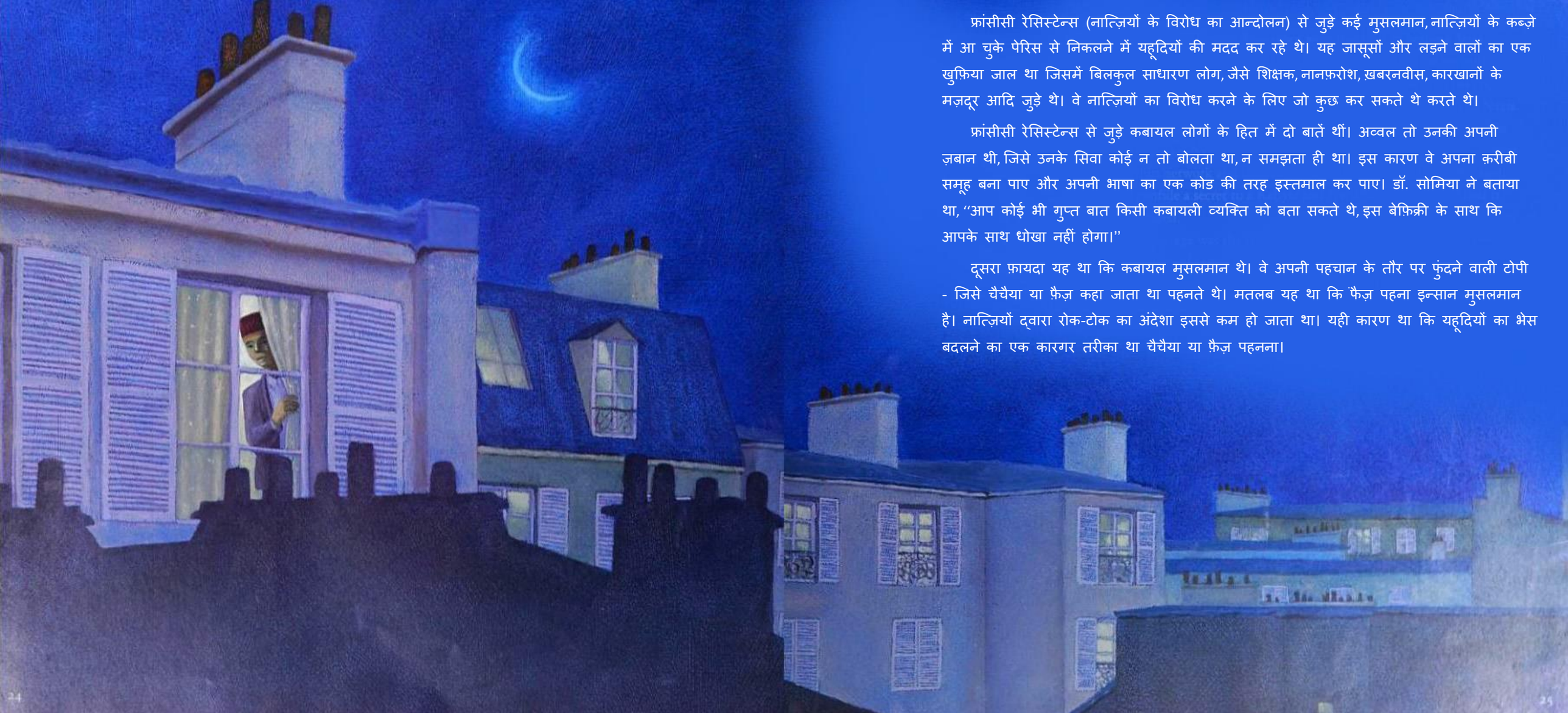

फ्रांसीसी रेसिस्टेन्स (नात्ज़ियों के विरोध का आन्दोलन) से जुड़े कई मुसलमान, नात्ज़ियों के कब्ज़े में आ चुके पेरिस से निकलने में यहूदियों की मदद कर रहे थे। यह जासूसों और लड़ने वालों का एक खुफ़िया जाल था जिसमें बिलकुल साधारण लोग, जैसे शिक्षक, नानफ़रोश, ख़बरनवीस, कारखानों के मज़दूर आदि जुड़े थे। वे नात्ज़ियों का विरोध करने के लिए जो कुछ कर सकते थे करते थे।

फ्रांसीसी रेसिस्टेन्स से जुड़े कबायल लोगों के हित में दो बातें थीं। अव्वल तो उनकी अपनी ज़बान थी, जिसे उनके सिवा कोई न तो बोलता था, न समझता ही था। इस कारण वे अपना क़रीबी समूह बना पाए और अपनी भाषा का एक कोड की तरह इस्तमाल कर पाए। डॉ. सोमिया ने बताया था, "आप कोई भी गुप्त बात किसी कबायली व्यक्ति को बता सकते थे, इस बेफ़िक्री के साथ कि आपके साथ धोखा नहीं होगा।"

दूसरा फ़ायदा यह था कि कबायल मुसलमान थे। वे अपनी पहचान के तौर पर फुंदने वाली टोपी - जिसे चैचैया या फ़ैज़ कहा जाता था पहनते थे। मतलब यह था कि फैज़ पहना इन्सान मुसलमान है। नात्ज़ियों द्वारा रोक-टोक का अंदेशा इससे कम हो जाता था। यही कारण था कि यहूदियों का भेस बदलने का एक कारगर तरीका था चैचैया या फ़ैज़ पहनना।

कबायल अपने खुफ़िया समूह के सहारे लोगों को पेरिस से निकाल सुरक्षित जगहों पर पहुँचाने में मदद करते। वे फ्रांस में रेसिस्टेन्स और अल्जीरिया की आज़ाद फ्रांसीसी सेना के बीच खुफ़िया संदेश भी ले जाते। यह समूह पहले-पहल तो युद्धबन्दियों और मित्र राष्ट्रों के पायलटों और पैराशूट से उतरे सैनिकों की मदद के लिए बनाया गया था। पर जब युद्ध लम्बा खिंचा तो कबायल यहूदी स्त्री-पुरुषों और बच्चों को भी ख़तरे से निकाल दूर ले जाने लगे। इस बचाव के लिए उनके द्वारा अपनाए गए रास्तों में से एक में मसजिद की भी भूमिका रहती थी। वे रात के कर्फ्यू के पहले लोगों को गुपचुप मसजिद में पहुँचा देते। यह वह वक़्त होता जब पुलिस वाले अपने रात के खाने में मशगूल होते थे। ऐसा एक किस्सा एक सामान पहुँचाने वाले की बात करता है। उसके पास तीन पहियों वाली साइकिल-गाड़ी थी, जिसके अगले हिस्से में एक बड़ा बक्सा लगा था। इस बक्से में इतनी जगह थी कि एक इन्सान आराम से छिप सकता था। जब तक कोई अन्दर झांक कर न देखता वह महफूज़ रहता था। यह सामान पहुँचाने वाला पेरिस की सड़कों पर, पुलिस की नाक के ठीक नीचे से गुज़रता और लोगों को मसजिद तक पहुँचा देता।

लोगों को चोरी-छिपे मसजिद में पहुँचाने के और भी तरीक़े थे। एल्बर्ट ने बताया था "आप एक चोर दरवाज़े से तहख़ाने, हमाम या मसजिद के रेस्त्रां तक पहुँच सकते थे।"

एक बार मसजिद पहुँचने के बाद लोग अमूमन लम्बे समय तक नहीं रुकते।

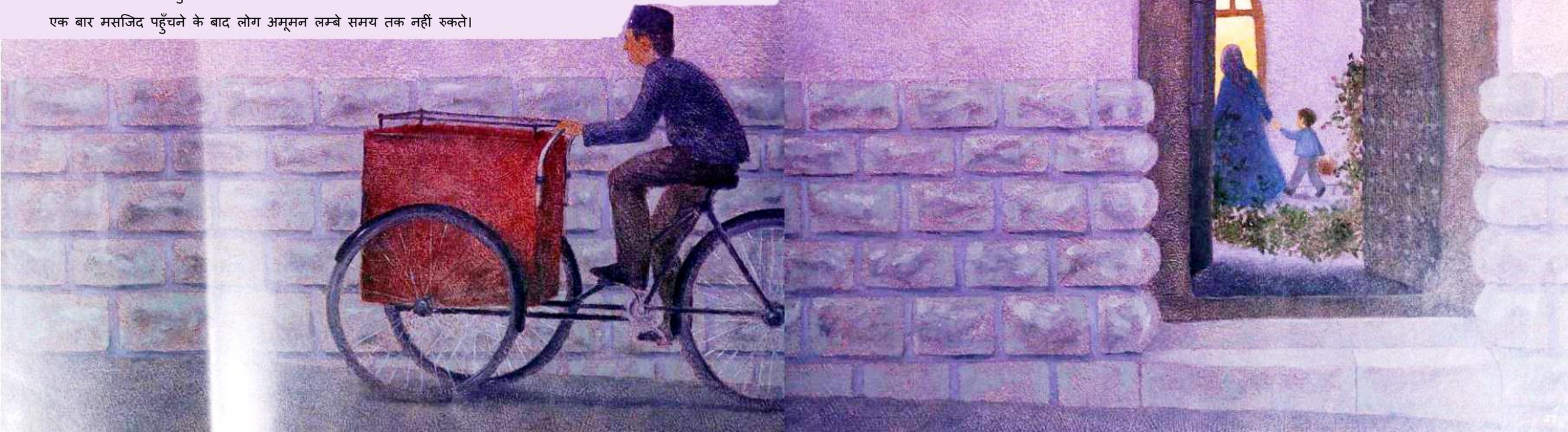

मसजिद के तहख़ाने से संकरी सीढ़ियाँ ज़मीन की सतह के नीचे बनीं सुरंगों की भूल-भुलैया तक ले जाती थीं। सदियों पहले, जब से पेरिस बसने लगा था, शहर की शानदार इमारतों को बनाने के लिए पत्थर खोदे जाने लगे थे। इससे आपस में जुड़ी सुरंगों, कमरों, गलियारों का एक *सोउटरीन* (भूमिगत) इलाका बना। इसमें एक नदी और दफ़नाने के कक्ष भी थे, जिन्हें कैटाकोम्बस् कहा जाता है।

इन भूमिगत सुरंगों और गलियारों की छतें नीची थीं। इतनी की कई जगह तो आगे बढ़ने के लिए उंकुडूं बैठ या रेंग कर जाना पड़ता था। खुरदुरी सीढ़ियाँ काफ़ी गहराई तक जाती थीं। पर वहाँ ऐसे गड्ढे भी थे जो राह न जानने वाला व्यक्ति को निगल सकते थे।

सैकड़ों मील लम्बे, घुप्प अंधेरे, और सर्द गलियारे, ज़मीन के ऊपर की सड़कों के नीचे, मुड़ते, बल खाते चलते ही जाते थे। अगर आप रास्ता जानते तो ये सुरंगें आपको सेन नदी के किनारे ले जा सकती थीं। और अगर रास्ता पता न हो तो आप बुरी तरह गुम हो सकते थे।

कबायल रेसिस्टेन्स के सदस्य, लोगों को ज़मीन के नीचे की सुरंगों के ज़रिए सेन नदी के किनारे ले जाते थे। वे उस जगह पहुँचते जहाँ एक बड़ा-सा केन्द्रीय शराब बाज़ार था। यहाँ पूरे फ्रांस से लकड़ी के बड़े-बड़े पीपों में शराब भर कर आती थी। ये पीपे लम्बे *पेनीश* (बजरों) में लाद कर लाए जाते - और वे खाली लौटते।

कबायल रेसिस्टेन्स इन बजरों का इस्तमाल कोडबद्ध संदेश भेजने के लिए करते। शराब के खाली पीपों में वे लोगों को छिपाते - मित्र राष्टों के विमान चालक, पैराशूट से उतरे सैनिक, भगोड़े युद्धबन्दी, रेसिस्टेन्स के सिपाही और यहूदी। सेन नदी के बहाव में ये बजरे अपने बेशकीमती माल को, यानी पेरिस के आलीशान मसजिद में पनाह लिए लोगों को महफ़ूज़ जगहों पर ले जाते।

जंग के दौरान सी बैंगहैब्रि को एक बेहद मुश्किल और ख़तरनाक संतुलन बनाए रखना पड़ा। मसज़िद के नाज़िम होने के नाते उन्हें पेरिस के मुसलमान समुदाय की हिफ़ाज़त के लिए नात्ज़ियों और विची सरकार से रोज़ाना निपटना पड़ता। पर पेरिस पर नात्ज़ी कब्ज़े के बाद उन्होंने मसजिद को गपचुप उन लोगों के लिए भी एक महफ़ूज़ जगह बनाई जिन्हें शिकार बनाया जा रहा था।

सितम्बर 1944 में, पूरे चार साल बाद, मित्र राष्ट्रों ने नात्ज़ियों को पेरिस से बाहर खदेड़ा। अगले साल युद्ध खत्म हुआ। सी बैंगहैब्रि, 1954 में अपनी मृत्यु तक मस्जिद के नाज़िम बने रहे। उनकी कब्र आलीशान मसजिद में मक्का की ओर मुँह किए बनाई गई है।

सी बैंगहैब्रि के कारण ही गायक सलीम हलाली अपना लम्बा और सफल जीवन जी सके। उन्हें आधुनिक उत्तर-अफ्रीकी संगीत का जनक माना जाता है।

एल्बर्ट एस्सोलीन अल्जीरियाई यहूदी थे जो युद्धबन्दी शिविर से भाग निकले थे। पेरिस से बच निकलने के बाद वे अल्जीरिया में आज़ाद फ्रांसीसी सेना से जुड़े, और युद्ध खत्म होने तक नात्ज़ियों से लड़ते रहे। इसके बाद वे पेरिस में ही बस गए। अपना शेष जीवन उन्होंने उसी आलीशान मसजिद के ज़रूरतमन्दों की मदद करते बिताया जहाँ उनकी जान बच सकी थी।

जंग के बाद ट्यूनीसिया के मुस्लिम डॉक्टर अहमद सोमिया रोगियों को बचाने का अपना काम करते रहे। उन्होंने अपने मरीज़ों की राजनीतिक मान्यताओं को कभी तवज्जो नहीं दी। नात्ज़ियों के कब्ज़े के दौरान उन्होंने जो कुछ किया उसका ज़िक्र वे बिरले ही करते थे।

मसजिद और रेसिस्टेन्स से जुड़े मुसलमानों ने अपने निःस्वार्थ कृत्यों से कई जानें बचाईं - यहूदी और ग़ैर-यहूदी। जो उन्हें सही लगा उसे करते वक़्त उन्होंने अपनी जानों की परवाह नहीं की। यह भुलाया नहीं जाना चाहिए कि अपने यहूदी भाई-बहनों की मदद के लिए मुसलमान आगे आए थे। नात्ज़ी कत्लेआम के उस ख़ौफनाक दौर में पेरिस के आलीशान मसजिद की चारदीवारी के बीच बेहद आला और बहादुरी से भरा कुछ घटा था।

उपसंहार

इस रहस्य से घिरी कहानी को कम ही लोग जानते हैं। उथल-पुथल के उस दौर की ऐसे लोगों की खुफ़िया घटनाओं के बारे में लिखना कई मुश्किलें खड़ी करता है, जो लिखित नहीं बल्की मौखिक परंपरा के लोग रहे हों। और जिनमें भागीदारी करने वाले अब इस दुनिया से विदा हो चुके हों। दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान पेरिस के मुसलमानों के साहसिक कारनामों के बारे में बहुत ही कम लिखा गया है। सरकारी दस्तावेजों में तो लगभग कुछ ही दर्ज नहीं है, क्योंकि उनकी गतिविधियाँ गुप्त थीं। सो सरकारी दस्तावेजों में वे दर्ज तब ही हो सकती थीं जब वे नाकामयाब रही होतीं। फिर भी कुछ कहानियाँ बची रही हैं, हमने उन्हें जाँचने की भरसक कोशिश की।

शुरुआत हमने उन यहूदियों को तलाशने से की जो मसजिद की मदद से बचाए गए थे। पर हम नाकामयाब रहे। तब हमें पता चला कि हालिया सालों में दूसरे लोगों ने भी ऐसी तहकीक़ातें की थीं। जहाँ तक हमें मालूम पड़ा इन घटनाओं से जुड़े लोगों की प्रत्यक्ष गवाहियाँ हैं ही नहीं, केवल दूसरे लोगों के मार्फ़त कुछ संदर्भ मिल सके हैं। दूसरे विश्वयुद्ध के त्रेसठ वर्ष बाद इसमें कोई अचरज भी नहीं है। सलीम हलाली, एल्बर्ट एस्सोलीने और डॉ. अहमद सोमिया सब दिवंगत हो चुके हैं। जो उस समय बच्चे थे, वे भी अब काफ़ी बुज़ुर्ग हो चुके हैं। यह भी साफ़ है कि जिन लोगों ने मसजिद में पनाह ली, उन्होंने वहाँ बहुत ही कम समय बिताया था। कुछ दिन या शायद कुछ ही घंटे। मसजिद अमूमन स्थाई न होकर अस्थाई पनाह देता था। बेशक इसमें कुछ अपपवाद ज़रूर थे। इसके अलावा मार्टिने बर्नहाइम, जो अंतर्राष्ट्रीय यहूदी विरोधी नस्लवाद केन्द्र की उपाध्यक्ष हैं, का कयास यह है कि जो बच्चे कुछ समय के लिए मसजिद आए होंगे उन्हें शायद यह पता भी न रहा होगा कि वे दरअसल हैं कहाँ। उनके साथ जो वयस्क रहे होंगे उन्होंने बात को छिपाने के लिए बच्चों को कुछ बताया ही नहीं होगा। साथ ही जिन वयस्कों ने पनाह ली होगी, उन्हें भी उस दहशत भरे दौर के दशकों बाद यह याद नहीं रहा होगा कि उन्होंने कुछ समय वहाँ बिताया था।

डैरी बेरकानी, एक अल्जीरियाई फिल्म निर्माता व उपन्यासकार हैं। उनके माता-पिता, दोनों ही कबायल रेसिस्टेन्स से जुड़े रहे थे। बेरकानी ने 1974 में इस कहानी पर शोध शुरू की। उन्होंने कई लोगों से साक्षात्कार किए। इनमें डॉ. सोमिया, एस्सोलीने और कबायल रेसिस्टेन्स के भूतपूर्व सदस्य शामिल थे। उन्होंने श्रीमति लैम्बर्गर से भी बात की। ये एक यहूदी महिला थीं जिन्होंने बताया कि जब वे छोटी थीं वे पेरिस से एक बजरे में बैठ बच निकली थीं जिसे कबायल संचालित कर रहे थे। बेरकानी और उनके फिल्म दल को आलीशान मसजिद के दस्तावेजों में एक रजिस्टर मिला था जिसमें बच्चों के नाम दर्ज थे। उनकी गणना के हिसाब से 1944 में पेरिस की जो मुस्लिम आबादी थी उसकी तुलना में रजिस्टर में करीब चार सौ अधिक बच्चे दर्ज थे। बेरकानी का मानना है कि ये यहूदी बच्चे रहे होंगे जिनकी हिफ़ाज़त के लिए उन्हें मुस्लिम पहचान दी गई होगी। पर कुछ साल बाद जब वे मस्जिद में वापस आए, वह रजिस्टर कहीं नहीं मिला।

मिस्टर बेरकानी के साथ हमने जो साक्षात्कार किया उसमें उन्होंने यह सब बताया था। 1990 में अपनी डॉक्युमेंट्री *उन रेसिस्टांस ओब्लीए: ल मौस्क* में उन्होंने वह सब दर्शाया जो कुछ उन्होंने अपनी तलाश में पाया।

मसजिद की मदद से जितने लोग बच पाए उनकी संख्या के काफ़ी अलग-अलग अनुमान मिलते हैं। रॉबर्ट सैटलॉफ अपनी क़िताब *अमंग द राइटिअस: लास्ट स्टोरीस् फ्रॉम द होलोकास्टस् लांग रीच इनटू अरब लैण्डस्* में वे आलीशान मसजिद के तत्कालीन नाज़िम दलेल बोबाकेर से अपनी मुलाकात का ज़िक्र करते हैं। बोबाकेर ने कहा था कि क़रीब सौ उत्तर अफ्रीकी यहूदियों को मुसलमान होने के पहचान-पत्र जारी किए गए और उनकी जान बचाई गई। पर एल्बर्ट एस्सोलीने ने अपने लेख *अलमानैक दु कॉम्ब्युटान्ट* में लिखा था - "कम से कम 1,732 नात्ज़ी विरोधियों को उसके (मसजिद के) तहख़ाने में पनाह मिल सकी: भगोड़े युद्धबन्दी ही नहीं, बल्की ईसाई और यहूदी भी। इनमें यहूदियों की संख्या ही सबसे ज़्यादा थी।" मिस्टर बेरकानी ने बताया कि एस्सोलोनी ने युद्ध के बाद मस्जिद लौट इस संख्या का अनुमान लगाया था। उन्हें पेरिस पर नात्ज़ी कब्ज़े के दौरान मसजिद के जो राशन कार्ड मिले उनमें 1,732 कार्ड अतिरिक्त थे। इससे एस्सोलीने ने कयास लगाया कि कम से कम इतने लोगों ने वहाँ पनाह ली होगी।

हमने पेरिस के विभिन्न लेखागारों और क़िताबघरों और प्रोवेन्स के एक क़िताबघर में जो शोध की उससे खास जानकारी नहीं मिल सकी। खुशकिस्मती से मिसेज बर्नहाइम और विदेश मंत्रालय के एक कार्यकर्ता को एक मेमो मिला। यह मेमो 24 सितम्बर 1940 का था और सीधे मंत्री को संबोधित था। इसमें बताया गया था कि नात्ज़ियों को शक है कि आलीशान मसजिद के कर्मचारी यहूदियों को बचाने के लिए मुसलमान होने के नकली पहचान-पत्र जारी कर रहे हैं। इसमें यह भी दर्ज था कि मसजिद के इमाम को बुलाया गया और उन्हें इस हरकत पर फ़ौरन रोक लगाने का हुक्म दिया गया। यह मेमो पेरिस पर नात्ज़ियों के कब्ज़े के तीन महीने बाद लिखा गया था।

जिस समय यह सब घटा था उस वक़्त जो लोग मौजूद थे उनसे अब बात नहीं हो सकती। इसलिए इस कहानी के कई पक्षों पर अनिश्चितता बनी रहेगी। केवल कुछ ही तथ्य इतिहासकारों को संतुष्ट कर सकेंगे। हमारे पास कुछ विश्वसनीय तथ्य बचते हैं। उन्हें जोड़ कर देखें तो इस बात का सबूत तो मिलता है कि पेरिस के आलीशान मसजिद ने कई यहूदियों की जानें बचाई थीं।

आभार

डैरी बेरकानी के बिना यह किस्सा हमेशा के लिए खो जाता। हम उनके तहेदिल से शुक्रगुज़ार हैं कि उन्होंने खुले दिल से हमारे साथ जानकारियाँ साझा कीं। उनकी फिल्म दुनिया भर में दिखाई जानी चाहिए। हम एनैट हरकोविटस् के भी शुक्रगुज़ार हैं जिनके प्रयासों से मिस्टर बेरकोनी की फिल्म अंग्रेज़ी भाषी दर्शकों को उपलब्ध हो सकी। फिल्म शान्ति और समझ का जो सन्देश देती है वही हमें मस्जिद की कहानी तक लाया। एनैट ने हमारा सम्पर्क मिस्टर बेरकानी से करवाया और यह भी सुझाया कि हम मार्टीने बर्नहाइम से मिलें। मिसेज बर्नहाइम की पकड़ व्यापक थी और कई बातों को समझने में उन्होंने हमारी मदद की। हम उनके भी तहेदिल से आभारी हैं।

हम अब्दुल फतेह हलीम का भी शुक्रिया अदा करना चाहते हैं, जो पेरिस अरब वर्ल्ड इन्स्टिट्यूट के लाइब्रेरियन हैं। हमारी मित्र कैरन मार्टिनेलो एक बार फिर हमारे लिए अनमोल सिद्ध हुईं। अपनी सहज उदारता और खुशमिजाज़ी के साथ उन्होंने लिप्यान्तरण और ज़मीनी शोध में मदद की। हम उन लोगों के भी आभारी हैं जिन्होंने अपनी व्यस्तताओं के बावजूद हमसे बातचीत करने का समय निकाला।

हमारी सम्पादक मेरी कैश, इस क़िताब की उत्साही सहयोगी रही हैं। इस महत्वपूर्ण कहानी को सबके साथ साझा करने का अवसर देने के लिए हम उनके शुक्रगुज़ार हैं।

अपने परिवारों के सतत् सहयोग के लिए हम उनके आभारी हैं। हम में और हमारी इस मुहिम में जो विश्वास उन्होंने जताया उसकी हम कद्र करते हैं।

संदर्भ

इस क़िताब में जितने भी बोले गए उद्धरण हैं वे डैरी बेरकानी की फिल्म *उन रेसिस्टांस ओब्लीए: ल मौस्क* से लिए गए हैं, और फ्रांसीसी से अनुदित किए गए हैं। पुस्तक के लिखित उद्धरण एल्बर्ट एस्सोलीने के लेख *आलमैनेक दु कॉम्ब्युटान्ट* से लिए गए हैं। डैरी बेरकानी ने कबायल भाषा में लिखे पत्र का फ्रांसीसी में अनुवाद किया था। उसका अंग्रेज़ी रूपान्तर एनैट हरकोविटस् ने किया। हमने उनकी अनुमति से उसका उपयोग किया है।